इकाई 10 मानव संसाधन विकास

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 भारत में शिक्षा का प्रावधान

- 10.2.1 शिक्षा का महत्व
- 10.2.2 शैक्षिक उपलब्धि में भारत का रिकार्ड
- 10.2.3 भारत की शैक्षिक उपलब्धियों के संबंध में कुछ कमियां
- 10.2.4 भारत में शिक्षा नीति तथा रणनीति

10.3 भारत में स्वास्थ्य सेवा

- 10.3.1 भारत में आधारभूत स्वास्थ्य सेवा
- 10.3.2 स्वास्थ्य सेवा हेतु आबंटन
- 10.3.3 स्वास्थ्य सेवा हेतु वित्त
- 10.3.4 विकासोन्मुख देशों में व्यय की संरचना एवं घटक
- 10.3.5 भारत में स्वास्थ्य योजनाएं एवं नीतियाँ

10.4 भारत में सामाजिक सुरक्षा

- 10.4.1 सामाजिक सुरक्षा क्या है?
- 10.4.2 सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण
- 10.4.3 संगठित क्षेत्र में भारत में सामाजिक सुरक्षा
- 10.4.4 असंगठित क्षेत्र में सुरक्षा

10.5 सारांश

10.6 शब्दावली

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर और संकेत

10.0 उद्देश्य

आपने पिछली इकाई में जनसंख्या एवं इससे संबंधित कुछ पक्षों का अध्ययन किया है। इस इकाई में जनसंख्या की गुणवत्ता पर बातचीत की जायेगी। उत्पादक पूंजी के रूप में मनुष्य का अध्ययन तथा राज्य द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा के माध्यम से मानवीय पूंजी में विनियोग पर यहाँ चर्चा की जा रही है। इस विनियोग से मानवीय पूंजी की गुणवत्ता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। हम यहाँ पर यह भी विचार करेंगे कि भारत की जनता में से किन लोगों को सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता है तथा सरकार इस विषय में कहाँ तक सफल हो सकी है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- शिक्षा नीति तथा भारत में शिक्षा की स्थिति का वर्णन कर सकेंगे;
- गरीबी, स्वास्थ्य और विकास के बीच के संबंध को स्पष्ट कर सकेंगे;
- भारत में सरकार की स्वास्थ्य संबंधी नीति का वर्णन कर सकेंगे;
- स्वास्थ्य संबंधी नीति के कुछ प्रमुख घटकों का मूल्यांकन कर सकेंगे और यह भी बता सकेंगे कि इस नीति का भारत की जनता के स्वास्थ्य पर कहां तक प्रभाव पड़ा है; और

- भारत से संबंधित सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न घटकों को स्पष्ट कर सकेंगे और उनके संबंध में जो प्रावधान किए गए हैं, उनकी सफलता की मात्रा के संबंध में विचार–विमर्श कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

1940 और 1950 के दशकों में एशिया, अफ्रिका और अमेरिका सहित अनेक देश औपनिवेषिक दासता से मुक्त हो गए। इनमें से भारत भी एक था। अनेक दशकों तक विदेशी शासन के अधीन रहने के कारण इनमें से प्रायः सभी देश अत्यंत निर्धन हो गए थे। जो देश स्वतंत्र हुए, उन्होंने मुख्यतः अपने आर्थिक विकास पर जोर दिया तथा विकास करने का साधन राष्ट्रीय आय को बढ़ाना माना। इसके लिए भौतिक पूंजी के संचय पर सर्वाधिक ध्यान दिया गया। आगे चल कर इस नीति का वांछित उद्देश्य सामाजिक विकास करना हो गया। इस इकाई में सामाजिक विकास संबंधी कुछ नीतियों से आपको परिचित कराया जाएगा। विशेषतः इस संबंध में शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा संबंधी नीतियों पर विचार किया जाएगा। इस अध्ययन के बाद आप यह पायेंगे कि विकास प्रक्रियाओं और कार्यकलापों का अंतिम उद्देश्य लोगों के जीवन में सुधार लाना होता है।

इसलिए इस इकाई में सरकार द्वारा किए जाने वाले कुछ उन कल्याण कार्यों के संबंध में विचार किया जाएगा जो मानव संसाधनों के विकास के रूप में होते हैं। जिन विषयों पर चर्चा की जाएगी वे हैं–शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक सुरक्षा। यह सच है कि भारत में ये कार्य कुछ सीमा तक निजी क्षेत्रों द्वारा भी किए जा संकते हैं और किए भी जा रहे हैं। परंतु यहां पर हम यही चर्चा करेंगे कि सरकार ने क्या किया है और अपने प्रयास में वह कहां तक सफल रही है? विकास के सिद्धांतों को विकसित करने के दौरान कुछ अर्थशास्त्रियों की मान्यता थी कि किसी राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में मानव संसाधनों का उतना ही महत्व होता है जितना कि भौतिक और प्राकृतिक संसाधनों का। इस संकल्पना से संबंधित यह विचार था कि जिस प्रकार से किसी राष्ट्र की भौतिक और वित्तीय परिसंपत्तियों में इस आशा में निवेश किया जाता है कि उनका प्रतिफल भविष्य में मिलेगा, उसी प्रकार किसी राष्ट्र के लिए यह भी आवश्यक होता है कि वह भविष्य में प्रतिफल की आशा से मानव संसाधनों में भी निवेश करे। शुरू–शुरू में शिक्षा को सर्वोत्कृष्ट मानव पूंजी माना जाता था। आगे चलकर विकास के क्षेत्र में अनुसंधान बढ़ने के साथ ही मानव पूंजी के समान ही स्वास्थ्य को भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा।

इस विचार के साथ ही कि मानवीय पूंजी भौतिक पूंजी की ही तरह महत्वपूर्ण है, यह सवाल उठा कि विकास के अनुमापक के रूप में सकल राष्ट्रीय उत्पाद विकास का उचित मापदंड नहीं हो सकता तथा मानव विकास को मापने की लिए अन्य मापदंडों की आवश्यकता है। पिछली इकाई में विकास के अन्य मापदंडों जैसे जीवन के भौतिक गुणवत्ता का निर्देशांक (Physical Quality of Life Index (PQLI) अथवा संयुक्त राष्ट्र का मानव विकास निर्देशांक के विषय में आपको जानकारी दी गई है। प्रस्तुत चर्चा में ये मापदंड बड़े प्रासंगिक हैं।

10.2 भारत में शिक्षा का प्रावधान

ऐसा क्यों है कि किसी राष्ट्र और उनके लोगों के विकास के लिए शिक्षा का महत्व बढ़ गया है। शिक्षा को अब पूंजीगत पदार्थों के ही समान माने जाने लगा है जो कुशल श्रमिक संख्या के रूप में मानव पूंजी की व्यवस्था करती है। यह उपभोक्ता वस्तुओं के रूप में भी सार्थक सिद्ध होती है जिसके उपभोग से मानव जीवन की गुणवत्ता में बहुत अधिक सुधार हो जाता है। इस प्रकार शिक्षा का महत्व बहुत अधिक बढ़ गया है।

10.2.1 शिक्षा का महत्व

सबसे पहली बात यह है कि शिक्षा का अपना ही महत्व होता है। शिक्षित होना अपने आप में ही महत्वपूर्ण होता है। दूसरी बात है कि शिक्षित व्यक्ति अनेक महत्व के कार्यों को कर पाता

है। आसानी से वह नौकरी प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसकी आमदनी बढ़ जाती है जिससे उसकी क्रयशक्ति बढ़ जाती है और उसका जीवन स्तर ऊंचा उठ जाता है। तीसरी बात है कि शिक्षित होने से वह सामाजिक आवश्यकताओं के संबंध में विचार–विमर्श करने लगता है और समूह की मांगों को सरलतापूर्वक सामूहिक रूप से पेश कर पाता है। चौथी बात है कि स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने का लक्ष्य औपचारिक शिक्षा से भी अधिक होता है। स्कूल में बच्चों के जाने से एक ओर तो वे अन्य बच्चों के संपर्क में आते हैं जिससे उनकी सोच का दायरा बढ़ जाता है और दूसरे बाल श्रम की मात्रा घट जाती है। अंततः शिक्षा की शक्तिदायक और वितरक भूमिकाएं होती हैं। सुविधाओं से वंचित लोगों को शिक्षा इस योग्य बनाती है कि वे अन्याय और अत्याचार का विरोध कर सकें और अपने को राजनीतिक रूप से संगठित कर सकें। यहां तक कि यदि एक व्यक्ति भी शिक्षित हो जाता है तो वह दूसरों को संगठित होने में सहायता कर सकता है। अन्य प्रकार के वंचनों को कम करने में भी शिक्षा सहायक होती है। उदाहरणार्थ केरल में उस शिक्षा के बल पर जाति अवरोध और स्त्री–पुरुष भेद बहुत कुछ कम हो गए हैं।

10.2.2 शैक्षिक उपलब्धि में भारत का रिकार्ड

शुरू से अब तक की पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान आर्थिक विकास में शिक्षा के महत्व और उसकी भूमिका पर बल दिया गया। उच्च शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, प्रबंध शिक्षा तथा अनुसंधान और विकास जैसे क्षेत्रों में भारत ने बहुत अधिक प्रगति की है। प्रायः कहा जाता है कि भारत से प्रतिभाशाली और प्रशिक्षित वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, डाक्टरों, कंप्यूटर विशेषज्ञों, प्रबंधकों एवं अन्य क्षेत्रों के प्रतिभाशाली छात्रों द्वारा अन्य देशों को चले जाने के कारण भारत से विकसित देशों को प्रतिभा का पलायन (brain drain) हो रहा है। लेकिन इस संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि भारत ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों को काफी समय से पैदा करता आ रहा है। इसीलिए आज भारत में ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की संख्या चीन की तुलना में छः गुणी हो गयी है। लेकिन हमें शिक्षा के क्षेत्र में समग्र उपलब्धियों की चर्चा करनी है।

शिक्षा संस्थाओं, नामांकनों और अध्यापकों के रूप में शैक्षिक आधारित संरचना को बढ़ाने में भारत ने बहुत अधिक प्रगति की है।

संस्थाएं

1951 से 1995 के बीच इस देश में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 2.1 लाख से बढ़कर 5.9 लाख हो गई जो 181 प्रतिशत वृद्धि थी। इसी अवधि में उच्च प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 13 हजार से बढ़कर 1.71 लाख हो गई जो 1216 प्रतिशत की वृद्धि थी। 1995 में 72 हजार माध्यमिक विद्यालय थे। 1961 से 1995 के बीच उच्च माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 17 हजार से बढ़कर 24 हजार हो गई, जो 460 प्रतिशत की वृद्धि थी। आर्थिक सर्वेक्षण 2000-1 के अनुसार 1951 से 1995 के बीच विश्वविद्यालयों की संख्या 27 से बढ़कर 185 हो गई, जो 740 प्रतिशत वृद्धि थी। कालेजों की संख्या लगभग 11000 है। इसके अतिरिक्त 42 समकक्ष (Deemed) विश्वविद्यालय तथा 5 केन्द्रीय एवं राज्य अधिनियमों के तहत स्थापित संस्थान हैं। छठे अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण (1993) के अनुसार कुल ग्रामीण वास स्थान (habitation) के 83.4 प्रतिशत के अंतर्गत 1 कि.मी. के अन्तर्गत ही प्राथमिक विद्यालय थे।

अध्यापक

1951 से 1995 के बीच प्रारंभिक एवं प्राथमिक विद्ययालयों में पढ़ाने वाले अध्यापकों की संख्या 7.5 लाख से बढ़कर 43.98 लाख हो गई जो छः गुना वृद्धि थी। 1995 में कुल अध्यापकों में महिला अध्यापकों की संख्या 34 प्रतिशत थी।

नामांकन (Enrolment)

सभी प्रकार की शिक्षा संस्थाओं में नामांकन में अत्यधिक वृद्धि हुई है। 1951-1995 के बीच प्राथमिक स्तर पर नामांकन की संख्या 192 लाख से बढ़कर 1097.3 लाख हो गई तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर नामांकन की संख्या 31 लाख से बढ़कर 401.1 लाख हो गई। 1951 और 1995-96 के बीच उच्च माध्यमिक स्तर पर नामांकन की संख्या 15 लाख से बढ़कर 249 लाख

हो गई जो 1560 प्रतिशत की वृद्धि थी। इसी अवधि में छात्राओं का नामांकन 13 प्रतिशत से बढ़कर 25 प्रतिशत हो गया।

1951 में समग्र नामांकन अनुपात 6-11 आयु वर्ग के लिए 42.6 प्रतिशत था जबकि 11-14 आयु वर्ग के लिए यह 12.7 प्रतिशत था। 1995 तक ये बढ़कर क्रमशः 104.3 और 67.6 हो गये। बालक–बालिकाओं के अलग अलग नामांकन के संबंध में हम पाते हैं कि 1995 में 6-11 आयु वर्ग में नामांकन अनुपात बालिकाओं की स्थिति में 93.3 प्रतिशत था जबकि बालकों की स्थिति में यह अनुपात 114.5 प्रतिशत था। उसी वर्ष में 11-14 आयु वर्ग में ये अनुपात बालिकाओं और बालकों के लिए क्रमशः 54.9 प्रतिशत और 79.5 प्रतिशत थे।

परन्तु इस विषय में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान परिषद के अनुमान शिक्षा मंत्रालय के अनुमानों से काफी कम हैं। परिषद का अनुमान है कि 1997 में प्राइमरी स्तर पर बालकों का नामांकन (enrolment) 90 प्रतिशत तथा बालिकाओं का 73 प्रतिशत था। 1998-99 वर्ष के दौरान भारत में प्राइमरी स्तर पर (कक्षा 1-4 तक) बालक एवं बालिकाओं का कुल मिलाकर नामांकन अनुपात 92.14 प्रतिशत था। लड़कों के मामले में यह अनुपात 100.86 प्रतिशत था जबकि लड़कियों के लिए 82.85 प्रतिशत।

परंतु उच्च प्राइमरी स्तर पर कुल नामांकन अनुपात 58 प्रतिशत था जिसमें लड़कों का प्रतिशत 65.27 तथा लड़कियों का 49.08 था।

अब हम अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के नामांकन के संबंध में विचार करेंगे। 1980-81 में पहली से पांचवीं कक्षाओं के लिए समग्र नामांकन अनुसूचित जाति के बालकों के लिए 105.4 प्रतिशत, अनुसूचित जनजाति के लिए 94.2 प्रतिशत एवं अखिल भारत के लिए 95.8 प्रतिशत था। बालिकाओं के लिए ये प्रतिशत क्रमशः 57.8, 45.9 और 64.1 थे। कुल आबादी के लिए यह प्रतिशत क्रमशः 82.2, 70.0 और 80.5 थे। अब हम हाल के वर्ष 1995-96 के संबंध में विचार करेंगे। बालकों के संबंध में अनुसूचित जातियों के लिए प्रतिशत 129.9, अनुसूचित जनजातियों के लिए 130.0 प्रतिशत और अखिल भारत के लिए 114.5 प्रतिशत था। बालिकाओं के संबंध में ये प्रतिशत अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों दोनों ही के लिए 94.9 तथा अखिल भारत के लिए 93.3 थे।

अब हम 1980-81 के संबंध में छठी से आठवीं कक्षाओं के संबंध में विचार करेंगे। बालकों के संबंध में अनुसूचित जातियों के लिए 41.4 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियों के लिए 28.2 प्रतिशत तथा अखिल भारत के लिए 54.3 प्रतिशत था। बालिकाओं के संबंध में ये प्रतिशत क्रमशः 16.2, 10.8 और 28.6 थे। कुल आबादी के लिए बालकों और बालिकाओं के लिए सम्मिलित रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं अखिल भारत के संबंध यह संख्या क्रमशः 29.1, 19.5 और 41.9 थी। अब हम वर्ष 1995-96 के संबंध में विचार करेंगे। बालकों के संबंध में ये प्रतिशत अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अखिल भारत के लिए क्रमशः 60.7, 60.8 और 79.5 थे। बालिकाओं के लिए ये प्रतिशत अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अखिल भारत के लिए क्रमशः 37.1, 37.1 और 55.0 थे। कुल आबादी के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अखिल भारत के लिए नामांकन प्रतिशत क्रमशः 49.2, 49.2 और 67.6 था।

10.2.3 भारत की शैक्षिक उपलब्धियों के संबंध में कुछ कमियाँ

भारत ने 1980 तथा 1990 के दशकों में शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति की है। 1950 में साक्षरता की दर 20 प्रतिशत से कम थी। यहाँ तक कि 1975 तक यह दर 30 प्रतिशत तक ही थी। परंतु 1991 से 1997 के बीच साक्षरता दर 52 प्रतिशत से बढ़कर 64 प्रतिशत हो गयी। पुरुष साक्षरता दर 64 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता दर 39 से बढ़कर 50 प्रतिशत हो गयी। उत्साहवर्धक बात तो यह है कि अपेक्षाकृत गरीब राज्यों जैसे – यू.पी, राजस्थान तथा बिहार में साक्षरता दर में पर्याप्त इजाफा हुआ है। इस प्रकार 1991 में बिहार एवं राजस्थान जो साक्षरता की दृष्टि से सबसे नीचे थे की साक्षरता दर में 1990-96 के दौरान क्रमशः 39 से 55 प्रतिशत तक 38 से 40 प्रतिशत प्रगति हुई।

दूसरी बात यह है कि भारत के विभिन्न राज्यों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त उपलब्धियां अलग अलग रही हैं। उदाहरणार्थ, स्त्री साक्षरता दर राजस्थान में 20 प्रतिशत तथा उत्तर प्रदेश में 25 प्रतिशत है जबकि केरल में यह 86 प्रतिशत है। साक्षरता की दर को ऊंचा उठाने के संबंध में विभिन्न राज्यों ने अलग अलग ढंग से प्रयास किया हैं तथा इस संबंध में उनकी नीतियां अलग अलग रही हैं।

तीसरी बात यह है कि शैक्षिक उपलब्धियों के संबंध में विभिन्न सामाजिक समूहों में और क्षेत्रों में बहुत अधिक असमानताएं हैं : पुरुषों और स्त्रियों के बीच, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच तथा वर्ग और जाति समूहों के बीच। साक्षरता की निम्न औसत दर सहित इस विशेषता का अर्थ यह होता है कि समाज के वंचित समूहों में शिक्षा का स्तर अत्यधिक नीचा होता है। उदाहरणार्थ, भारत की कुल आबादी में अनुसूचित जाति की महिलाएं 16 प्रतिशत हैं परंतु उनमें साक्षरता दर मात्र 19 प्रतिशत है। कुल आबादी में अनुसूचित जनजाति की महिलाएं 8 प्रतिशत हैं तथा उनमें साक्षरता दर मात्र 16 प्रतिशत है। बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान जैसे अनेक पिछड़े क्षेत्रों में 7 वर्ष और उससे अधिक उम्र की सभी स्त्रियों में साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम है।

चौथी बात यह है कि असाक्षरता सभी आयु वर्ग के लोगों में है, केवल अधिक उम्र वालों में नहीं। उदाहरणार्थ, 0-14 वर्ष के आयु वर्ग की महिलाओं में से 50 प्रतिषत असाक्षर हैं। शिक्षा के क्षेत्र में दुखद बात यह है कि कम आयु वर्ग के लोगों के बीच व्यापक रूप से असाक्षरता बनी हुई है।

पांचवी बात यह है कि भारत में नामांकन (enrolment) की दरें बहुत ही कम हैं। 12-14 वर्ष के आयु वर्ग की ग्रामीण स्त्रियों में से 50 प्रतिशत से अधिक स्त्रियों का नामांकन किसी स्कूल में कभी भी नहीं हुआ। बिहार, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के लिए यह अनुपात दो–तिहाई है, जबकि राजस्थान के लिए यह 82 प्रतिशत है। समस्त भारत में 10-14 वर्ष के आयु वर्ग की केवल 42 प्रतिशत स्त्रियां स्कूल जाती हैं।

छठी परेशानी की बात है छात्रों के निष्क्रामण (drop-rate) की अत्यधिक दर। यह अत्यधिक निश्क्रमण दर विद्यालय में उपस्थिति की कम संख्या में परिलक्षित होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस देश में एक ओर तो छात्रों की नामांकन दर बहुत ही कम है और दूसरी ओर जिनका नामांकन होता है उनमें से बहुत से स्कूल छोड़ कर चले जाते हैं। साक्षर व्यक्तियों में प्राथमिक शिक्षा पूरा करने वालों का अनुपात बहुत ही कम है।

अर्थव्यवस्था की रोजगार की आवश्यकताओं और प्रशिक्षित जनशक्ति के बीच मेल न होने के कारण शिक्षित बेरोजगारों, विशेषतः सामान्य आर्ट डिग्री वालो की संख्या बढ़ती जा रही है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि इस देश से विकसित देशों को वैज्ञानिक और पेशेवर जनशक्ति के रूप में प्रतिभा पलायन बढ़ता जा रहा है जिसे भारत से इन देशों को आर्थिक सहायता कहा जा सकता है। इस जनशक्ति में डाक्टर, इंजीनियर आदि आ जाते हैं। इसीलिए यह दलील देने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है कि उच्च शिक्षा का निजीकरण कर देना चाहिए या कम से कम ऐसी शिक्षा संस्थाओं को सरकार की ओर से आर्थिक सहायता बंद कर देनी चाहिए। कहा जाता है कि ऐसी आर्थिक सहायता से सामाजिक आर्थिक असमानता बढ़ती है। परंतु इस संबंध में महत्वपूर्ण बात यह है कि इन संस्थाओं को यदि सरकार की ओर से आर्थिक सहायता बंद की जाती है तो मेधावी छात्रों को, विशेषतः कम आय वालों को, आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। यही तर्क निजीकृत, खर्चीली एवं उच्च कोटि की चिकित्सा सुविधाओं के संबंध में भी दिया जाता है, जिनकी मात्रा पिछले दशक में बहुत ही बढ़ गई है। ऐसा इसलिए हुआ है नगरों एवं गांवों दोनों ही में ही आय के वितरण में असमानता बढ़ती जा रही है जिससे चिकित्सा के क्षेत्रों में भी असमानता हो रही है। प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय की तुलना में चिकित्सा, देखभाल और शिक्षा पर निजी उपभोग व्यय अधिक तेजी से बढ़ा है।

सामान्य उच्च शिक्षा के विकृत ढंग से प्रसार तथा प्राथमिक/बुनियादी शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा एवं प्रौढ़ साक्षरता के क्षेत्र में पहले से चली आ रही अपूर्णता के कारण बिजली, सिंचाई या

उर्वरकों जैसे क्षेत्रों में किए गए निवेश की तुलना में शिक्षा के क्षेत्र में उत्पादिता लाने वाले सार्वजनिक निवेश कम हुए हैं।

10.2.4 भारत में शिक्षा नीति और रणनीति

भारत के संविधान में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों (Directive Principles of State Policy) के चलते शिक्षा नीति को बल मिलता है। संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि राज्य का कर्तव्य है कि वह 14 वर्ष तक के उम्र के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे। यह कार्य 1960 तक पूरा हो जाना था। प्रारंभिक शिक्षा का सार्वजनीकरण भारत में शिक्षा नीति की आधारशिला रही है। यह लक्ष्य अत्यधिक महत्वाकांक्षा से भरा रहा है तथा इसे प्राप्त करने के लिए जो प्रयास किए गए, वे पर्याप्त सिद्ध नहीं हुए। अभी तक भारत का कोई भी राज्य अनिवार्य शिक्षा के कार्यक्रम को कार्यान्वित नहीं कर पाया है। हाल में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित कर दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र और राज्यों के बीच सहयोग को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा को संविधान की समवर्ती सूची (Concurrent List) में डाल दिया गया। बाद में कुछ कदम उठाये गए जैसे – प्राइमरी शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु 1986 में आपरेशन ब्लाक बोर्ड कार्यक्रम, लगभग 150 जनपदों में जिला प्राइमरी शिक्षा कार्यक्रम के तहत 6-11 वर्ष की आयु के बीच विशेष रूप से बालिकाओं, सीमान्त समुदायों तथा अक्षम बच्चों को शिक्षा प्रदान करना। हाल में किए जाने वाले अन्य उपायों में शामिल हैं – संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन के तहत पंचायती राज संस्थाओं को प्राइमरी शिक्षा हेतु अधिक अधिकार देना, आदि।

भारत की शिक्षा नीति की एक त्रुटि यह रही है कि सरकार ने बार–बार बड़े ऊंचे लक्ष्यों की घोषणा तो कर दी लेकिन इन लक्ष्यों को प्राप्त करने संबंधी व्यावहारिक कदम उसने नहीं उठाये गये। वास्तविकता तो यह है कि इन कथित लक्ष्यों और वास्तविक नीति के बीच प्रायः असंगतियां ही पाई गईं। कभी कभी तो ये लक्ष्य प्रायः परस्पर विरोधी भी रहे हैं। किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मानदंड की दृष्टि से भारत शिक्षा पर कम काम कर रहा है। 1996-97 में केंद्र तथा राज्य मिलाकर सकल घरेलू उत्पाद का चार प्रतिशत ही खर्च कर रहे थे। उदारीकरण की नीति के दौरान शिक्षा की क्या प्रवृत्ति होगी, कहना मुश्किल है। पर निजी क्षेत्र की भूमिका बढ़ेगी तथा शिक्षा पर सरकारी व्यय कम होने की संभावना है।

बोध प्रश्न 1

1) राष्ट्रीय विकास के लिए शिक्षा क्यों महत्वपूर्ण है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में शिक्षा के प्रदर्शन में क्या खामियाँ रही हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में शिक्षा नीति की मुख्य विशेषताओं को संक्षेप में बताइए।

.....

.....

.....

.....

10.3 भारत में स्वास्थ्य सेवा

भारत की जनता के लिए स्वास्थ्य सेवा एवं उनकी स्वास्थ्य स्थिति संतोषजनक नहीं है। वास्तव में इन दोनों ही के संबंध में हालत खराब है। अच्छा स्वास्थ्य अपने आप में ही वांछनीय लक्ष्य होता है, इसके साथ ही साथ इससे श्रम शक्ति की उत्पादिता बढ़ती है क्योंकि अन्य बातें पूर्ववत रहने पर स्वस्थ श्रमिक अधिक उत्पादक तथा कार्यकुशल होते हैं।

भारत में निर्धनता की परिभाषा को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि पोषण–शक्ति का एक निम्नतम स्तर बनाए रखा जाए। यदि आबादी के एक बहुत बड़े भाग का पोषण स्तर नीचा है तो उसका अर्थ होता है कि भारत की आबादी का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी गरीबी की रेखा के नीचे है। निर्धन लोग संक्रमण रोगों से अधिक ग्रस्त होते हैं। इसके अतिरिक्त गरीबी के कारण उनकी क्रय शक्ति अत्यंत कम हो जाती है जिससे पोषक आहार नहीं मिल पाते, सफाई की व्यवस्था नहीं हो पाती तथा पीने का पानी और अच्छे ढंग का मकान उपलब्ध नहीं हो पाता। इस प्रकार इस देश में गरीबी, कुपोषण और निम्न स्तर का स्वास्थ्य, ये तीनों ही स्थितियां साथ साथ चलती हैं। इस परिच्छेद में हम स्वास्थ्य सेवा की व्यवस्था के संबंध में विचार करेंगे।

10.3.1 भारत में आधारभूत स्वास्थ्य सेवा

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में अनेक दिशाओं में स्वास्थ्य सेवाओं के संबंध में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। उदाहरणार्थ पिछले चालीस वर्षों में अशोधित मृत्यु दर (crude death rate) प्रति वर्ष 27 प्रति हजार से घटकर प्रति हजार 9 से भी कम हो गई। जन्म के समय जीवन संभाविता (life expectancy) 1941-51 - 1985-86 के बीच 31-32 वर्ष से बढ़कर लगभग 54.7 वर्ष हो गई। 1999 तक प्रति हजार शिशु मृत्यु दर 160 से घटकर 70 हो गई। चेचक की बीमारी का उन्मूलन कर दिया गया है। मलेरिया एवं कुछ अन्य संप्रेषण रोगों से मृत्यु दर पर बहुत कुछ नियंत्रण पा लिया गया है। पोलियों को समाप्त करने के लिए सरकार ने वृहद कार्यक्रम शुरू किया है। 1955-56 से 1981-82 के बीच सरकार द्वारा स्वास्थ्य पर किया गया खर्च प्रति व्यक्ति 1.50 रु. से बढ़कर 27.86 रु. हो गया, हालांकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद में इसका अंश मुश्किल से 2 प्रतिशत से अधिक हो पाया।

इस देश में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की सीमित उपलब्धता एवं ग्रामीण क्षेत्रों में इनके लगभग अभाव होने के कारण भारत सरकार ने प्रत्येक ब्लाक समुदाय विकास में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को स्थापित करने के संबंध में कदम उठाए हैं। भारत ने द्वितीय पंच वर्षीय योजना के अंत तक देश में 5000 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों (PHC) की स्थापना की। भारत विश्व स्वास्थ्य संगठन के अल्मा आटा घोषणा पत्र (1978) का हस्ताक्षरकर्ता हो गया जिसके अनुसार भारत के लिए आवश्यक हो गया है कि वह 2000 ई. तक सबके लिए स्वास्थ्य की व्यवस्था करे। इसी के अनुसार 1982 में भारत सरकार ने संसद के दोनों सदनों में 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति' को पारित कराया। नौवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत स्वास्थ्य एक प्राथमिकता के रूप में स्वीकार किया गया है और विभिन्न स्वास्थ्य कार्यक्रमों के समन्वय पर जोर दिया गया है।

10.3.2 स्वास्थ्य सेवा हेतु आबंटन

भारत और अन्य अधिकतर विकासशील देशों ने लक्ष्य रखा है कि वर्ष 2000 के अंत तक समस्त आबादी को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जायेंगी। परंतु सचाई तो यह है कि इन देशों में इस समय

मूल सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं पर जो खर्च किये जा रहे हैं, वे इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य शिक्षा, प्रतिरक्षण (immunisation) आदि जैसी कम लागत की सार्वजनिक सेवाओं पर बहुत ही कम निजी व्यय किया जा रहा है।

कम आय वाले देशों में स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति व्यय बहुत ही कम है। आय के बढ़ने के साथ साथ स्वास्थ्य सेवा की मांग अनुपात से अधिक बढ़ जाती है। ऐसा होने का आंशिक कारण यह है कि रोगों का स्वरूप निरोध्य संक्रमण रोगों से कार्डो वस्कूलर रोगों (Cardio-vascular diseases) जैसा होता जा रहा है। कार्डो–वस्कूलर प्रकार के रोगों का इलाज बहुत ही खर्चीला होता है। इस प्रकार विकसित देशों में निरोधक उपायों द्वारा रोगों और मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। ये उपाय कम खर्चीले होते हैं। उदाहरणार्थ पेंसिलीन के आविष्कार से बहुत पहले ही आज के विकसित और धनी देशों में मृत्यु दर को बहुत कम कर लिया गया था। ऐसा सफाई की व्यवस्था एवं प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा किया गया। 19वीं सदी के शुरू के वर्षों में इन देशों में भी संक्रामक रोगों की मात्रा बहुत अधिक थी। इन समाजों में आधुनिक दवाओं की भूमिका बहुत कम थी। विकासोन्मुख देशों में इस समय निरोधक और व्याधिशमक चिकित्सा सेवा पर धन का आवंटन करते समय इन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

विकासोन्मुख देशों में स्वास्थ्य सेवा सुविधाओं की एक दूसरी विशेषता यह है कि इन सेवाओं के लिए धन की व्यवस्था अभी भी मुख्यतः निजी व्यक्तियों द्वारा की जाती है। भारत और बंग्लादेश जैसे देशों में स्वास्थ्य सेवाओं पर किए जाने वाले कुल व्यय के 60 से 70 प्रतिशत तक की व्यवस्था निजी व्यक्तियों द्वारा की जाती है।

परंतु जहां तक दी जाने वाली सेवाओं की मात्रा का प्रश्न है, निजी क्षेत्र का अंश कम होता है क्योंकि सरकारी सुविधाओं की तुलना में निजी क्षेत्र की सुविधाएं बहुत अधिक खर्चीली होती हैं। निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि ऐसे आंकड़ों के संकलन की व्यवस्था नहीं है।

10.3.3 स्वास्थ्य सेवाओं के लिए वित्त

विकासोन्मुख देशों में स्वास्थ्य पर व्यय किए जाने वाले धन की व्यवस्था प्रायः सामान्य कर राजस्व से की जाती है। अनेक देशों में जनसंख्या के कुछ भाग के लिए सामाजिक सुरक्षा प्रणाली होती है। उदाहरणार्थ, भारत में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना (CGHS) सुविधा का लाभ उठाते हैं तथा संगठित क्षेत्र के उद्योगों के श्रमिक कर्मचारी राजकीय बीमा (ESI) का लाभ उठाते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं पर सरकार जो खर्च करती है, उसका थोड़ा भाग ही सेवाओं का उपभोग करने वालों से सामान्य लागत वसूली और उपभोक्ता प्रभार के रूप में प्राप्त हो पाता है। 1990-91 में सरकारी अस्पतालों में सरकार को जो खर्च करना पड़ा उसका 2 प्रतिशत से भी कम धन रोगियों से फीस के रूप में प्राप्त हो सका। इसके विपरीत 1970 के दशक में रोगियों से प्राप्त होने वाली रकम लगभग 6 प्रतिशत थी।

निजी क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं की वित्त व्यवस्था

इसके विपरीत निजी क्षेत्र में अस्पतालों के डाक्टरों व अन्य कर्मचारियों की सेवाओं पर जो रकम खर्च की जाती है, वह पूर्णतः रोगियों से प्राप्त हो जाती है। अधिकतर विकासोन्मुख देशों में तृतीय पक्ष–भुगतान एवं चिकित्सा बीमा की मात्रा बहुत ही कम होती है। हालांकि भारत जैसे कुछ देशों में अब चिकित्सा बीमा की व्यवस्था होने लगी है। विशेषतः सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों एवं निजी कंपनियों के कर्मचारी कंपनियों द्वारा प्रायोजित अनेक बीमा योजनाओं के अंतर्गत आते हैं। पर इन योजनाओं की मात्रा ज्ञात नहीं है।

10.3.4 विकासशील देशों में व्यय की संरचना एवं घटक

प्रश्न यह उठता है कि विकासशील देशों में जिस प्रकार के व्यय की आवश्यकता होती है, उसके स्वरूप और घटक क्या हैं? इसे ज्ञात करने के लिए बच्चा पैदा होने के पहले और बाद के एवं अन्य प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाले व्यय का आकलन करना आवश्यक होता है। लेकिन ये आकलन कालक्रम (over time) एवं क्षेत्रों के अनुसार अलग अलग हो सकते हैं।

भारत में आम धारणा यह है कि इस देश में रोगों को रोकने पर किए जाने वाले व्यय की अपेक्षा उनके उपचार की सेवाओं पर अधिक खर्च किया जाता है। परंतु इस प्रकार के व्यय को पूर्णतः रोका भी नहीं जा सकता। अस्पतालों का होना आवश्यक होता है। ऐसी स्थिति में ऐसा किया जा सकता है कि परामर्श प्रणाली (referral system) में सुधार लाया जाए जो भारत में प्रायः नहीं के बराबर है।

अस्पतालों में भर्ती होने वाले रोगियों के प्रकार को यदि हम लें तो पाते हैं कि उनमें से बहुत बड़ी संख्या उन लोगों की है जो पेट की बीमारियों, पेचिस, सांस के रोग, टी.बी., कुपोषण के फलस्वरूप आने वाली परेशानियों आदि से पीड़ित होते हैं। सफाई की व्यवस्था और निवारक (Preventive) सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा पर अधिक बल देकर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को और अधिक मजबूत बनाकर, नगरों में स्थानीय औषधालयों की व्यवस्था करके तथा द्वितीयक (Secondary level) स्तर के अस्पतालों (जिला स्तर के) में और सुधार लाकर इन रोगों पर काबू पाया जा सकता है। इस प्रकार यदि हम विकासशील देशों में अधिकतर अस्पतालों की लागत–प्रभाविता का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि अस्पताल प्रणाली पर आवश्यक व्यय तो करना पड़ता है परंतु यह प्राथमिक स्तर की सुविधाओं और निवारक सेवाओं की तुलना में अत्यधिक लागत–अप्रभावी (cost ineffective) होती है।

स्वास्थ्य क्षेत्र में कोष की कमी के मुख्य कारण क्या हैं? ऐसा लगता है कि मुख्य कारण यह है कि अधिकतर विकासशील देशों में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली अत्यंत केन्द्रीकृत है। इसके अतिरिक्त आमदनी की प्रक्रिया एवं युक्ति संगत परामर्श प्रणाली के रूप में कीमत निर्धारण तंत्र का उपयोग सही ढंग से नहीं किया जाता। इस संबंध में आगे चर्चा की जाएगी। स्वास्थ्य सेवाओं पर पर्याप्त मात्रा में व्यय नहीं हो पाता तथा जो स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराई जाती हैं, वे अच्छी किस्म की नहीं होतीं। इसका एक कारण यह है कि सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र के स्वास्थ्य सेवा कर्मचारियों को पर्याप्त रूप में वेतन नहीं मिल पाता तथा उनके पास पर्याप्त मात्रा में ऐसी सामग्रियां उपलब्ध नहीं होती कि वे लोगों को सहायक सुविधाएं (Support Services) उपलब्ध करा सकें। उदाहरणार्थ, दवाओं के बजट एवं अनिवार्य देखभाल के व्यय के लिए पर्याप्त मात्रा में धन की व्यवस्था नहीं हो पाती। ऐसा प्रायः तब होता है जब बजट में कटौती की जाती है। चूंकि वेतन में कटौती तो की नहीं जा सकती, अतः बजट कटौती की स्थिति में दवाओं, उपकरणों एवं देखभाल पर होने वाले व्यय में कटौती करना होता है।

10.3.5 भारत में स्वास्थ्य योजनाएं और नीतियां

इस समय भारत में समग्र स्वास्थ्य योजना का उद्देश्य निरोधक लोक उन्मुख सेवाओं (Preventive Public Oriented Services) की व्यवस्था करना है तथा इस संबंध में ग्रामीण क्षेत्रों में ऐसी सेवाओं को उपलब्ध कराने पर अधिक बल दिया जाता है। कम से कम सभी प्रकार के योजना प्रलेखों में इसी संबंध में जोर दिया गया है। परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। इस समय भारत में स्वास्थ्य सेवाएं नगर–उन्मुखी, संपन्न व्यक्तियों पर अधिक ध्यान देने वाली तथा रोगों के उपचार पर जोर देने वाली हैं। फिर भी लोक निरोधक सेवाओं (public preventive services) के क्षेत्र में भी कुछ सफलता मिली है।

जहां तक व्यय का संबंध है, स्वास्थ्य के अंतर्गत चिकित्सा एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य व्यय आते हैं। स्वास्थ्य से संबंधित व्यय हैं – परिवार कल्याण, पोषण, आदि। भारत में स्वास्थ्य राज्य सरकारों के विषय के अंतर्गत आता है, परंतु परिवार कल्याण की व्यबस्था केन्द्रीय सरकार करती है। केंद्र में स्वास्थ्य के साथ जिन एजेंसियों का मुख्य रूप से संबंध है, वे हैं – स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, श्रम मंत्रालय और समाज कल्याण विभाग। न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (जिसका एक घटक पोषण है) जैसे अन्य विशिष्ट कार्यक्रमों का भी स्वास्थ्य नीतियों के साथ संबंध होता है।

अंत में कहा जा सकता है कि योजना आयोग सार्वजनिक निरोधक सेवाओं पर जोर देता है तथा स्वास्थ्य मंत्रालय प्रायः रोगों के उपचार सुविधाओं पर जोर देता है। इस प्रकार इन दोनों का कार्य ऐसे प्रयोजनों के लिए हो जाता है जो एक दूसरे के विरोधी होते हैं। एक दूसरी बात यह

कही जा सकती है कि परिवार कल्याण का महत्व बढ़ता जा रहा है, विशेषतः व्यय के संबंध में। अंतिम बात यह है कि स्वास्थ्य से संबंधित सरकारी बजट के व्यय अंश में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है।

बोध प्रश्न 2

1) राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति शुरू की गई थी :

   अ) 1950 में

   ब) 1969 में

   स) 1982 में

   द) 1991 में

2) सामान्य रूप से स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए वित्त की कमी प्रायः क्यों होती है?

   .....

   .....

   .....

   .....

3) महामारी संक्रमण (Epidemiological trasition) से आप क्या समझते हैं?

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

10.4 भारत में सामाजिक सुरक्षा

आजादी के बाद भारत में सामाजिक सुरक्षा के जो उपाय किए गए हैं, उनके संबंध में विचार करने से पहले हम यह जानना चाहेंगे कि सामाजिक सुरक्षा का क्या अर्थ है, इसके अंतर्गत किस प्रकार की सेवाएं प्रदान की जाती हैं? इससे लाभ उठाने वाले कौन हैं? किन संस्थाओं के द्वारा ये सेवाएं प्रदान की जाती हैं? इत्यादि। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात तो यह जानना है कि सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

10.4.1 सामाजिक सुरक्षा क्या है?

भारत की बहुत बड़ी संख्या का विशेष रूप से गांवों में रहने वालों और निर्धन लोगों के लिए वंचित होना (deprivation) और दुर्बलता एक सचाई है। बंचन और दुर्बलता को दूर करने वाले विशेष प्रकार के सार्वजनिक कार्यों को सामाजिक सुरक्षा के उपायों का अंग माना जा सकता है।

सामाजिक सुरक्षा शब्द की परिभाषा करते समय परेशानी यह हो जाती है कि कहीं यह परिभाषा अत्यंत विशिष्ट या अत्यधिक सामान्य न हो जाए। विकसित देशों में कुछ बातें अत्यंत महत्व की हो गई हैं, जैसे – बेरोजगारी बीमा, वृद्धावस्था, पेंशन तथा अशक्तता (invalidity) हित लाभ। परंतु विकासशील देशों के संबंध में विचार करते समय ये विधियां उपयोगी और समुचित नहीं भी हो सकती हैं। सामाजिक सुरक्षा की संकल्पना की परिभाषा के संबंध में दूसरा खतरा यह

है कि यह बहुत अधिक सामान्य हो सकती है। उचित तो यह होगा कि परिभाषा को साधनों के रूप में न लेकर इसे वंचन को दूर करने और दुर्बलता को कम करने के अर्थ में लिया जाए। यदि यह विधि अपनाई जाती है तो इस उद्देश्य को पूरा करने में सहायक वे सभी बातें आ जाएंगी जो सामाजिक सुरक्षा प्रणाली के अंग हैं। परंतु यह विधि बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं होगी क्योंकि मानव कल्याण अनेक सामाजिक और आर्थिक कारकों से प्रभावित होता है और ये सभी सामाजिक सुरक्षा की परिभाषा के अंतर्गत नहीं आते।

सार्वजनिक कार्य केवल सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्य ही नहीं होते। इसके अंतर्गत वे कार्य भी आते हैं जो जनता अपने लिए करती है। विपत्ति के समय और अन्यथा भी गैर–सरकारी संगठनों (NGOs), पुण्यार्थ संस्थाओं एवं धार्मिक संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य भी इसके अंतर्गत आते हैं। भारत के अनेक परंपरागत समाजों में परिवार सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। समाचार पत्र आदि सरकार पर इस बात के लिए दबाव बनाए रखते हैं कि वह सामाजिक सुरक्षा के कार्यों को करें। इस संबंध में जनता के लिए आवश्यक होता है कि वह जागरूक रहे और अपने हितों के प्रहरी के रूप में कार्य करे।

10.4.2 सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण

सामाजिक सुरक्षा के उपायों के संबंध में सरकार दो व्यापक विधियां अपना सकती है। इसमें पहली है सामान्य आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देना तथा इस संवृद्धि से हुए सामान्य लाभों का उपयोग आबादी के गरीब तबके के लोगों की भलाई के लिए करना। दूसरी विधि है शिक्षा और स्वास्थ्य के रूप में प्रत्यक्ष रूप से सार्वजनिक कार्य करना तथा आय वितरण के स्वरूप में सुधार लाना और रोजगार के अवसरों को उपलब्ध कराना। यह कहा जा सकता है कि मुद्रास्फीति को रोकने से आबादी के गरीब तबके के लोगों पर कीमतों की वृद्धि के दुष्प्रभाव को कम करने में सहायता मिलती है। इनमें से पहली विधि ने हांगकांग, सिंगापुर, जापान और दक्षिण कोरिया जैसे पूर्व एशिया के देशों में एवं कुवेत और UAE में बहुत सफलता पूर्वक कार्य किया है। दूसरी विधि के ज्वलंत उदाहरण हैं – क्यूबा तथा चीन। कुछ प्रेक्षकों का तो कहना है कि चीन में उदारीकरण के कारण जब 1980 और 1990 के दशकों में संवृद्धि की दरें बढ़ गईं तब शिशु मृत्यु दर जैसे सामाजिक सूचकांकों में वृद्धि हो गई। ऐसा लगता है कि संवृद्धि और सामाजिक सुरक्षा के बीच किसी न किसी प्रकार का समझौता (Trade Off) हो गया है।

यद्यपि हमने संवृद्धि के द्वारा सामाजिक सुरक्षा और प्रत्यक्ष सार्वजनिक कार्यों पर आधारित सुरक्षा के उपायों में भेद दिखाया है, परंतु इन विधियों में अंतर कुछ जटिल है। पहली बात तो यह है कि अनेक स्थितियों में ये दोनों साथ–साथ चलती हैं। दूसरी बात यह है कि कुछ स्थितियों में प्रश्न इन दोनों में से किसी एक के चयन का नहीं बल्कि इनके सही समय और क्रम का होता है। उदाहरणार्थ, किसी देश के लिए संभव हो सकता है कि संवृद्धि पर उतना जोर न देकर पहले वह सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रत्यक्ष सामाजिक कार्य ही करें तथा बाद में संवृद्धि के संबंध में जोर दे।

द्वितीय, यह सही नहीं है कि पहली विधि का यह अभिप्राय होता है कि निजी क्षेत्र पर निर्भर रहना या उसे प्रोत्साहित करना और प्रत्यक्ष सार्वजनिक कार्य का अर्थ है कि सरकार की भूमिका बहुत बड़ी हो। इसका उदाहरण भारत है। 1950 के दशक में भारत ने विकास का वह मार्ग अपनाया जिसमें आर्थिक संवृद्धि पर जोर दिया गया था परंतु सार्वजनिक क्षेत्र को संवृद्धि का ईजन माना गया था और इस क्षेत्र को अर्थव्यवस्था का प्रभावशाली क्षेत्र (Commanding heights of the economy) होने दिया गया था। इस विधि के अंतर्गत यह मान लिया गया था कि आर्थिक संवृद्धि का लाभ स्वतः ही समाज के निम्न वर्ग तक को भी प्राप्त होने लगेगा। 1960 के दशक के अंतिम वर्षों में महसूस किया जाने लगा कि संवृद्धि का लाभ समाज के सभी वर्ग के लोगों को प्राप्त नहीं हो रहा है। आय का वितरण अत्यंत अन्यायपूर्ण और विषम था। गरीबी की मात्रा बहुत अधिक थी। नीतियों के अंतर्गत प्रत्यक्ष कार्यवाही को लाने की आवश्यकता थी। इसी के फलस्वरूप गरीबी को दूर करने वाले एवं रोजगार सृजन के प्रत्यक्ष कार्यक्रमों की शुरूआत की गई। इसके साथ ही साथ मूल न्यूनतम आवश्यकताओं के कार्यक्रम भी चलाए गए, जिनके अंतर्गत पीने के पानी, आवास आदि की व्यवस्था थी। 1991 के बाद से पुनः इसी प्रकार

के कार्य किये जाने लगे हैं। आर्थिक संवृद्धि पर पुनः जोर दिया जाता है, हालांकि अब निजी क्षेत्र और विदेशी निवेशकों की भूमिका बढ़ी है।

10.4.3 संगठित क्षेत्र में भारत में सामाजिक सुरक्षा

श्रम मंत्रालय के वर्ष 1997-98 के वार्षिक रिपोर्ट में सामाजिक सुरक्षा की परिभाषा निम्नलिखित प्रकार से की गई। 'समाज द्वारा अपने सदस्यों को विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक उपायों द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा। यह सुरक्षा उन आर्थिक और सामाजिक पीड़ियों के प्रति की जाती है जो बीमारी, प्रसूति, रोजगार के दौरान क्षति, बेरोजगारी, अशक्तता, वृद्धावस्था और मृत्यु के फलस्वरूप आमदनी समाप्त होने या उसमें अत्यंत कमी हो जाने के कारण होती है। यह सुरक्षा बच्चों सहित परिवार की चिकित्सा सेवा के रूप में भी की जाती है। ऐसी आकस्मिकताओं के उत्पन्न होने की स्थिति में सामाजिक सुरक्षा नकद एवं वस्तु दोनों ही रूपों में प्रदान की जाती है।' इस परिभाषा के अंतर्गत आमदनी का बंद हो जाना या उसमें कमी होना आता है। आमदनी का अभाव या आमदनी का निम्न स्तर नहीं आता। इसके अतिरिक्त इस परिभाषा के अंतर्गत कुस्वास्थ्य से आशय आय के अर्जन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव से होता है, कल्याण में कमी से नहीं।

भारत में सामाजिक सुरक्षा से संबंधित कानून मुख्यतः संगठित क्षेत्र के कामगारों पर लागू होते हैं। इन कानूनों को श्रमिकों एवं कर्मचारियों को लाभ के लिए बनाया गया है। इनमें से प्रमुख कानून निम्नलिखित हैं :

- कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923
- कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- कर्मचारी भविष्य–निधि और प्रकीर्ण (Miscellaneous) उपबंध अधिनियम, 1952
- प्रसूतिकालीन लाभ अधिनियम, 1961
- अनुग्रह (gratuity) भुगतान अधिनियम, 1972

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 - इस अधिनियम के अंतर्गत औद्योगिक दुर्घटनाओं की स्थितियों में या व्यवसाय जनित बीमारियों के कारण अपंगता या मृत्यु की स्थिति में श्रमिकों को क्षतिपूर्ति का प्रावधान है। यह क्षतिपूर्ति ऐसे व्यक्तियों को दी जाती है जो उन फैक्टरियों, खानों, बागानों, रेलवे या उन अन्य क्षेत्रों में कार्य करते हुए मृत्यु के शिकार हो जाते हैं या अपंग हो जाते हैं जिन्हें इस अधिनियम की दूसरी अनुसूची में दर्ज किया गया है। इस अधिनियम के मुख्य हिताधिकारी (beneficiaries) वे श्रमिक/आश्रित व्यक्ति होते हैं जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत नहीं आते। क्षतिपूर्ति की राशि हैः अस्थायी अपंगता की स्थिति में मजदूरी का 50 प्रतिशत, अधिकतम पांच वर्षों को लिए, स्थायी अपंगता की स्थिति में न्यूनतम 60,000 रु. से लेकर अधिकतम 2,74,000 तक तथा मृत्यु की स्थिति में न्यूनतम 50,000 रु. से लेकर अधिकतम 2,28,000 रु. तक।

कर्मचारी भविष्य-निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 को 14 मार्च 1952 से लागू किया गया। इस समय इस अधिनियम के अंतर्गत निम्नलिखित तीन योजनाएं चल रही हैं:

- कर्मचारी भविष्य निधि योजना, 1952
- कर्मचारी डिपॉजिट लिन्क्ड बीमा योजना, 1976
- कर्मचारी पेंशन योजना, 1955

इस कार्यक्रम का उद्देश्य अनिवार्य भविष्य निधि, पेंशन और डिपॉजिट लिन्क्ड बीमा का प्रावधान करना है। यह उन फैक्टरियों और प्रतिष्ठानों पर लागू होता है जिनमें अनुसूचित उद्योगों में 20 या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं तथा ऐसे प्रतिष्ठानों पर भी लागू होता है जिन्हें केन्द्रीय सरकार अधिसूचित करती है। इस कार्यक्रम से केवल वे ही व्यक्ति लाभान्वित

हो सकते है जिनकी मासिक आय 5000 रु. से अधिक नहीं है। इससे पहले अधिकतम सीमा 3,500 रु. थी। भविष्य निधि का भुगतान 12 प्रतिशत या 10 प्रतिशत (जो भी लागू हो) की दर से किया जाता है। मासिक या परिवार पेंशन योजनाओं का प्रावधान है। इसका भुगतान सेवा निवृत्ति पर किया जाता है परन्तु जीवन बीमा के लिए या मकान बनाने के लिए इसमें से धन पहले भी निकाला जा सकता है।

इस समय यह अधिनियम 177 प्रकार की फैक्टरियों/प्रतिष्ठानों पर लागू होता है। इनमें से प्रत्येक फैक्टरी/प्रतिष्ठानों में 20 या उससे अधिक श्रमिक काम करते हैं। मार्च 1997 के अंत में कर्मचारी पेंशन योजना के अंतर्गत 202.9 लाख अभिदाताओं (subscribers) सहित 2.77 लाख प्रतिष्ठान आते थे। जो व्यक्ति परिवार पेंशन योजना के सदस्य थे, उन्हें अनिवार्य रूप से कर्मचारी प्रेंशन योजना के अंतर्गत आना पड़ता है। जो लोग 16 नबम्बर 1995 से भविष्य निधि योजना के सदस्य हुए, उनके लिए भी यह योजना अनिवार्य है। यह योजना 16 नबम्बर 1995 से लागू हुई, लेकिन स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति योजना के अंतर्गत आने वाले एवं अन्य कर्मचारियों के लिए विकल्प है कि यदि वे चाहें तो 1 अप्रैल 1993 से इस योजना के अंतर्गत आ सकते हैं। इस योजना के अंतर्गत आने योग्य होने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की अंशदायी सेवा (Contributory Service) कम से कम 10 वर्षों की हो। सामान्य पेंशन सेवा निवृत्ति के बाद मिलती है, परंतु 50 वर्ष की आयु पूरा करने के बाद भी बट्टागत (discount) दर पर पेंशन प्राप्त हो जाती है। इस योजना के अंतर्गत निम्नलिखित परिस्थितियों में पेंशन दी जा सकती है :

- अधिवर्षिता (Superannuation)
- सेवानिवृत्ति
- नौकरी के दौरान मृत्यु
- स्थायी पूर्ण अपंगता
- निवृत्ति अथवा अधिवर्षिता के बाद मृत्यु
- शिशु पेंशन
- अनाथ पेंशन

मासिक भुगतान निम्नलिखित सूत्र के अनुसार किया जाता है :

पेंशन = पेंशनयोग वेतन × (पेंशन योग सेवा + 2)/70

जहां पेंशन योग्य सेवा पिछले बारह महीनों के वेतन की औसत है।

अनुग्रह राशि भुगतान अधिनियम, 1972 उन कारखानों और अन्य प्रतिष्ठानों पर लागू होता है जिनमें काम करने वालों की संख्या 10 से कम न हो। 10 वर्षों तक सेवा करने के बाद कर्मचारियों को इस दर से ग्रैच्युटी मिलती है – सेवा के प्रत्येक पूरे वर्ष या छः मास से अधिक के लिए 15 दिनों की मजदूरी। ग्रैच्यूटी की अधिकतम रकम 2.5 लाख रुपये होती है।

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 एक विशेष प्रकार की सामाजिक सुरक्षा विधि है तथा इसके द्वारा श्रमिकों को अपरिष्कृत प्रकार का स्वास्थ्य (Crude form) बीमा प्राप्त होता है। बीमारी, प्रसूति एवं रोजगार के दौरान आहत होने की स्थिति में इसके द्वारा स्वास्थ्य सेवा एवं नकद भुगतान प्राप्त होते हैं। यह अधिनियम उन कारखानों पर लागू होता है जिनमें बिजली का प्रयोग होता है तथा जिनमें 10 या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं। यह उन कारखानों और कुछ अन्य प्रतिष्ठानों पर भी लागू होता है जिनमें बिजली का प्रयोग नहीं किया जाता और उनमें कम से कम 20 व्यक्ति काम करते हैं। 1997 तक इसके अंतर्गत 73 लाख कर्मचारी आते थे।

कर्मचारी राज्य बीमा निगम नामक निकाय इस अधिनियम का प्रशासन चलाता है। इस निगम के सदस्य, नियोक्ताओं, कर्मचारियों, केन्द्रीय और राज्य सरकार, संसद तथा मेडिकल पेशे का

प्रतिनिधित्व करते हैं। केन्द्रीय सरकार के श्रम मंत्री इस निगम के अध्यक्ष होते हैं। निगम के सदस्यों में से ही एक स्थायी समिति बनाई जाती है जो ESI योजनाओं के लिए कार्यपालिका का कार्य करती है तथा इसको अध्यक्ष श्रम मंत्रालय के सचिव होते हैं। इस समय 20 क्षेत्रीय बोर्ड और लगभग 310 स्थानीय समितियां कार्यरत हैं। ESI योजनाओं का वित्तीयन मुख्यतः नियोक्ताओं और कर्मचारियों के अंशदान से होता है। चिकित्सा सुविधाओं के प्रावधान पर खर्च होने वाली रकम में राज्य सरकारों का अंश 12.5 प्रतिशत होता है। 1.4.1997 से चिकित्सा सुविधा पर व्यय को प्रति बीमाकृत व्यक्ति परिवार इकाई पर 410 रु. से बढ़ाकर 500 रु. कर दिया गया है। इस प्रति व्यक्ति अधिकतम सीमा में 165 रु. दवाओं और ड्रेसिंग के लिए निर्धारित किये गए है।

प्रसूतिकालीन लाभ अधिनियम, 1961 का उद्देश्य संगठित क्षेत्रक में श्रमजीवी माताओं को सुविधा प्रदान करना है। इस अधिनियम को मध्य प्रदेश में कृषि एवं निर्माण क्षेत्रक में कार्य करने वाली महिलाओं पर भी लागू करने का प्रस्ताव हाल ही में स्वीकृत किया गया है।

भूमि सुधार द्वारा सामाजिक सुरक्षा

इस संदर्भ में हम दो प्रकार की नीतियों के संबंध में विचार कर सकते हैं : उच्चतम सीमा सहित पुनर्वितरण नीतियां और काश्तकारी सुधार।

भारत में काश्तकारी कानून 1950 के दशक में पास किए गए। 1980 के दशक के मध्य तक इन उच्चतम सीमा अधिनियमों के अंतर्गत कुल कृषि की जाने वाली भूमि का लगभग 1.5 प्रतिशत भाग को अधिग्रहण कर लिया गया था और इसमें से 80% से भी कम का वास्तव में पुनर्वितरण कर दिया गया था। 1980-81 की कृषिगणना के अनुसार कुल कृषि भूमि 16.3 करोड़ हेक्टर थी। इसमें से केवल 29.7 लाख हेक्टर भूमि को बेषी (Surplus) घोषित किया गया। 34 लाख व्यक्तियों को प्रतिव्यक्ति लगभग 1.3 एकड़ भूमि दी गई। इस प्रकार इन लोगों में सुरक्षा की भावना बढ़ गई क्योंकि इनमें बहुत से लोग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के थे। फिर भी जो कुल भूमि वितरित की गई, उसकी मात्रा बहुत ही कम थी। अतः गांवों में रहने वाले निर्धन लोगों में से बहुत ही कम लोग इससे लाभान्वित हो सके।

जहाँ काश्तकारी सुधार हुए हैं उसके बहुत बड़े कारण राजनैतिक आवश्यकताएं और इच्छाशक्ति रही हैं। इस संबंध में सबसे अधिक सफलता केरल और पश्चिम बंगाल में हुई है।

उच्चतम सीमा कानूनों के द्वारा भूमि के वितरण के संबंध में बहुत अधिक कार्य नहीं हो पाया है।

सामाजिक सुरक्षा के रूप में रोजगार सृजन कार्यक्रम

भारत में गांवों के गरीब लोगों के लिए प्रमुख रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण समन्वित रोजगार कार्यक्रम (IRDP) रहा है। इस कार्यक्रम का प्रारंभ 1976 में 20 ब्लाकों में किया गया। उसके बाद 1978 में इसका विस्तार पहले 2,300 ब्लाकों में किया गया और उसके बाद 1980 में इसका विस्तार समस्त देश में कर दिया गया। इस कार्यक्रम का लक्ष्य समूह ग्रामीण निर्धन व्यक्ति थे। इस कार्यक्रम का लक्ष्य था गरीबों के स्वनियोजन द्वारा संपत्ति पैदा करना तथा गरीबों को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना। DWACRA तथा TRYSEM जैसे अन्य कार्यक्रम भी इसके अंतर्गत थे।

मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के अंतर्गत रोजगार गारंटी योजना 1972, कार्य के लिए भोजन कार्यक्रम 1977, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम 1980 तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम 1983 आते हैं। अंतिम दो कार्यक्रमों को एक साथ मिलाकर 1989 में जवाहर रोजगार कार्यक्रम शुरू किया गया।

इसके बाद कई और भी कार्यक्रम शुरू किये गए। इनमें शामिल हैं – नेहरू रोजगार योजना, प्रधानमंत्री समन्वित शहरी गरीबी निवारण कार्यक्रम।

पूर्व में शुरू किये गये कार्यक्रमों में परिवर्तन भी किये गये हैं। जवाहर रोजगार योजना के स्थान पर अप्रैल 1999 से जवाहर ग्राम समृद्धि योजना नामक नया कार्यक्रम शुरू किया गया है। यह केंद्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है तथा कुल लागत में केंद्र तथा राज्य सरकार का भाग 75:25 है।

समन्वित ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा मिलियन वैल्स स्कीम, ट्राइज्म आदि कार्यक्रमों का पुनर्गठन कर स्वरोजगार पैदा करने हेतु स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना नामक नया कार्यक्रम 1 अप्रैल 1999 से शुरू किया गया है। वृद्ध गरीब लोगों को सामाजिक सहायता प्रदान करने हेतु केंद्र सरकार ने 15 अगस्त 1995 से एक राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम की शुरूआत की। यह कार्यक्रम शत–प्रतिशत केंद्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्यक्रम भी हैं –

- रोजगार अश्वासन कार्यक्रम
- प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना
- स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (SJSRY)

ये सभी योजनाएं अपने उद्देश्यों, क्षेत्र तथा कवरेज में भिन्नता लिए हुए हैं। इन सभी योजनाओं के केवल हमने नाम गिनाए हैं। विस्तार के लिए आप अलग से पढ़ सकते हैं।

प्रायः इन सभी कार्यक्रमों को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों तथा रोजगार सृजन कार्यक्रमों के अंतर्गत पढ़ाया जाता है। पर गरीबों के लिए रोजगार साधनों जैसे भूमि की उपलब्धता, भोजन, सुरक्षा आदि मूलभूत आवश्यकताएं हैं, अतः ये सभी सामाजिक सुरक्षा के अंग हैं।

इनके अतिरिक्त असंगठित श्रमिकों के लिए कुछ विशेष कार्यक्रम भी हैं, जैसे कि **बीड़ी श्रमिक कल्याण कोश अधिनियम 1976** और **सिनेमा श्रमिक कल्याण कोश 1981**। इनके अतिरिक्त एक विस्तृत न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम भी है जिसका उद्देश्य आवश्यकताएं जैसे – स्वच्छ पीने का पानी, सफाई तथा आवास की सुविधाएं जुटाना है। इन्दिरा आवास योजना नाम का एक कार्यक्रम भी चल रहा है जिसका लक्ष्य गरीबों को गृह प्रदान करना है।

बोध प्रश्न 3

1) सामाजिक सुरक्षा से आप क्या समझते है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में संगठित क्षेत्र में लागू कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक सुरक्षा के उपायों को बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) असंगठित क्षेत्र में गरीब एवं असहाय लोगों को किस प्रकार की सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 सारांश

आर्थिक और सामाजिक विकास बहुत कुछ श्रमशक्ति की किस्म पर निर्भर करता है। अच्छी शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के द्वारा श्रमशक्ति में सुधार लाया जा सकता है। शिक्षा के महत्व को देखते हुए भारत के संविधान निर्माताओं ने निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के प्रावधान को राज्य की नीति के निदेशक सिद्धांतों के रूप में शामिल कर लिया। यद्यपि प्रारंभिक शिक्षा की सर्व–व्यापकता और निरक्षरता के उन्मूलन को बार–बार योजना का लक्ष्य घोषित किया गया है पर फिर भी इस लक्ष्य को अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। फिर भी शिक्षा की सुविधाओं और नामांकन में बहुत अधिक वृद्धि हुई है, परंतु महिलाओं के लिए शिक्षा सुविधाओं और उनके नामांकन के संबंध में विशेष रूप से असमानता रही है। राज्यों में साक्षरता के संबंध में साक्षरता और विकास के स्तर के बीच विशेष रूप से संबंध रहा है, जिसके अपवाद केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और हिमाचल प्रदेश जैसे कुछ राज्य रहे हैं जहां साक्षरता की दर बहुत अधिक है। उच्च शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में असंतुलन और असंतोषजनक बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए हाल में ही 10+2 स्तर पर व्यवसायीकरण पर जोर दिया जाने लगा है।

प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा योजना के अंतर्गत आबादी का अधिकाधिक भाग आने लगा है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में विस्तृत चिकित्सा आधारिक संरचना में वृद्धि हुई है। (उसी प्रकार प्रतिरक्षण, स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था, मां और बच्चे के लिए समुन्नत पोषण की व्यवस्था तथा मां और बच्चों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं के द्वारा देश के अंदर से बीमारियों और मृत्यु दर को बहुत कम कर दिया गया है। इन सबके चलते आयु संभाविता (life expectancy) में वृद्धि हुई है तथा शिशु मृत्यु दर (infant mortality) में कमी हुई है।

चिकित्सा की आधारिक संरचना की उपलब्धता के संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बहुत अधिक असमानताएं हैं। गुणवत्ता और मात्रा के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में नगरीय क्षेत्रों की हालत बहुत अच्छी है। देश में स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की सीमित उपलब्धता एवं ग्रामीण क्षेत्रों में इसकी स्थिति को नजर में रखते हुए सरकार ने अपना लक्ष्य बनाया है – 2000 ई. तक सबके लिए स्वास्थ्य की व्यवस्था करना'। परंतु इस समय देश में शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए जो सुविधाएं उपलब्ध हैं, वे शहरों और गांवों में रहने वाले गरीब लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

10.6 शब्दावली

शिशु मृत्यु-दर (Infant Mortality Rate) : प्रति हजार जीवित बच्चों की एक वर्ष की आयु तक मृत्यु की दर।

साक्षरता-दर (Literacy Rate) : कुल जनसंख्या में साक्षर व्यक्तियों का प्रतिशत।

गैर-योजना व्यय (Non-Plan Expenditure) : गैर–योजना व्यय वे व्यय हैं जो चालू पंच वर्षीय योजना के अंग नहीं होते। इस प्रकार पिछली योजनाओं के समय में पूरी की गई प्रायोजनाओं के संबंध में वचनबद्ध व्यय गैर–योजना व्यय होते हैं। कभी–कभी गैर योजना व्ययों को अनुरक्षण व्यय भी कहा जाता है।

योजनागत व्यय (Plan Expenditure) : वे सभी व्यय जिन्हें चालू पंच वर्षीय योजना में शामिल किया जाता है, योजनागत व्यय कहे जाते है। उदाहरणार्थ आठवीं पंच वर्षीय योजना में शामिल की गई शिक्षा संबंधी प्रायोजनाओं पर किए जाने वाले व्यय को आठवीं योजना की अवधि में योजनागत व्यय कहा जाएगा।

निजीकरण (Privatisation) : सार्वजनिक संसाधनों की सहायता से सार्वजनिक क्षेत्र में कुछ उत्पादन उद्यमों या उपयोगी संस्थाओं और सेवा सुविधा कार्यकलापों का गठन किया जाता है, विशेषतः ऐसे कार्यकलाप जो आम जनता और समाज की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। कभी कभी उपर्युक्त को निजी क्षेत्र को हस्तांतरित कर दिया जाता है। इस प्रकार ये कार्यकलाप लागत, कीमत और लाभ–निर्धारण के संबंध में सामान्य बाजार की शक्तियों के अधीन हो जाते हैं। परंतु स्वयं सरकार सामाजिक उद्देश्यों के अनुरूप बाजार–शक्तियों के अनुसार कार्य नहीं कर सकती। सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र को ऐसे कार्यकलापों को हस्तांतरित करने की प्रक्रिया को निजीकरण कहा जाता है।

10.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

अहमद, एथिशम, जीन ड्रेज, जॉन हिल्स एंड अमर्त्य सेन (संपादक) 1991, *सोशल सेक्यूरिटी इन डिवलपिंग कंट्रीज,* क्लेरेडल प्रेस : आक्सफोर्ड।

बालन, के. 1989, *हेल्थ फॉर ऑल बाई 2000 ए. डी.* आशीष पब्लिशिंग हाऊस, न्यू दिल्ली।

बरमन, पीटर एंड एम. ई. खान (संपादन) 1993, *पेइंग फॉर इंडियाज हेल्थ केयर,* सेज पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली।

बोस, ए., डी. बी. गुप्ता एंड एम.के. प्रेमी (संपादक), 1982, *सोशल स्टैटिस्टिक्सः हेल्थ एंड एजुकेशन,* विकास पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली।

कूपर एम.एच. एंड ए.जे. कुलयेर, 1973, *हेल्थ इकॉनामिक्स* (विशेषतः सी.एम. लिंडसे, एस.जे. मुश्किन और वी. आर फुश्च के लेख), पेनगीन बुक्स लि., लंदन।

दास गुप्ता, मोनिका, लिंकन सी. चेन एंड टी. एन. कृष्णन (संपादक) 1996, *हेल्थ, पावर्टी एंड डेबलपमेंट इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : दिल्ली।

घोष आर. एंड एम. जकारिया, 1987, *एजुकेशन एंड प्रोसेस आफ चेंज,* सेज पब्लिकेशंस, न्यू दिल्ली (लेख संख्या 5,6 और 9)।

बर्ल्ड डेवलपमेंट रिपोर्ट, 1993, इन्वेस्टिंग इन हेल्थ, वर्ल्ड बैंक पब्लिकेशन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : आक्सफोर्ड

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट, 1986, नेशनल पॉलिसी आफ एजुकेशन, 1986, न्यू दिल्ली।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, प्लानिंग कमीशन (1997), नाइन्थ फाइव इयर प्लान 1997-2002 (ड्राफ्ट), वोलुम II (चैप्टर 2 एंड 3), नई दिल्ली।

पंचमुखी, पी.आर. 1989, स्टडीज इन एजुकेशनल रिफार्म इन इंडिया, वोलुम टू, इकानामिक्स आफ एजुकेशनल फाइनेन्सेस, हिमालय पब्लिसिंग हाऊस, न्यू दिल्ली।

सेन, ए.के. एंड जीन ड्रेज (1995), इंडिया : इकॉनामिक डेवलपमेंट एंड सोशल ओपोर्चिनिटी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली।

शर्मा, आदर्श एंड नीलम सूद (संपादक), एप्रोच एंड स्ट्रटेजिज आफ चाइल्ड डेवलपमेंट इन इंडिया : ए रिब्यू। नेशनल इंस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक कोओपरेशन एंड चाइल्ड डेवलपमेंट, न्यू दिल्ली।

10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर एवं संकेत

बोध प्रश्न 1

1) उप–भाग 10.2.1 पढ़ें और उत्तर दें।

2) उप–भाग 10.2.3 पढ़ें और उत्तर दें।

3) उप–भाग 10.2.4 पढ़ें और उत्तर दें।

बोध प्रश्न 2

1) (स)

2) उप–भाग 10.3.4 पढ़ें और उत्तर दें।

3) महामारी संक्रमण से आशय स्वास्थ्य सेवाओं के ऐसे सुधार से है जिसके द्वारा समष्टि स्तर पर मृत्यु दर में कमी आती है।

बोध प्रश्न 3

1) (स)

2) उप–भाग 10.4.1 पढ़ें और उत्तर दें।

3) उप–भाग 10.4.3 पढ़ें और उत्तर दें।